International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN: **3049-2017**
IJMH 2024; 1(1): 80-84
© 2024 IJMH
www.themultijournal.com

Received: 19-04-2024
Accepted: 26-04-2024
Publish : 27-04-2024

डॉ.मनीषा सिंह,
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
अनुसूया प्रसाद बहुगुणा राजकीय-स्नातकोत्तर महाविद्यालय अगस्त्यमुनि,
रुद्रप्रयाग, उत्तराखण्ड

Correspondence:
डॉ.मनीषा सिंह,
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
अनुसूया प्रसाद बहुगुणा राजकीय-स्नातकोत्तर महाविद्यालय अगस्त्यमुनि,
रुद्रप्रयाग, उत्तराखण्ड

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में पर्यावरण एवं पर्यावरण-संरक्षण

डॉ.मनीषा सिंह

सार

संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि पर्यावरण एक सार्वकालिक एवं सार्वदैशिक विषय है। यही कारण है कि हमारे ऋषियों, मुनियों, कवियों आदि ने अपनी रचनाओं में पर्यावरण एवं पर्यावरण-संरक्षण को विशेष महत्त्व दिया है । इसी प्रसंग में महाकवि कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् उल्लेखनीय है । प्रस्तुत शोधपत्र में अभिज्ञानशाकुन्तलम् में महाकवि द्वारा प्रतिपादित पर्यावरण एवं पर्यावरण-संरक्षण सम्बन्धी विचारों का विशेष रूप से विवेचन किया गया है जो वर्तमान काल में भी प्रासंगिक सिद्ध होता है ।

महाकवि कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् संस्कृत-साहित्य की ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व साहित्य की अनुपम कृति है, जो सम्पूर्ण मानव-जीवन का आदर्श प्रस्तुत करती हुई भारतीय लोक-जीवन में विशेष महत्त्व रखती है । विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से कालिदास को प्रकृति का सूक्ष्म द्रष्टा स्वीकार किया है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में स्थान-स्थान पर महाकवि की पर्यावरण एवं पर्यावरण-संरक्षण सम्बन्धी अलौकिक चेतना के दर्शन होते हैं । परि का अर्थ है सब ओर,[1] चारों ओर, इधर-उधर, इर्द-गिर्द, घिरा हुआ[2] आदि। वृङ् धातु आवृत्त या आच्छादित करने[3] के अर्थ में प्रयोग की जाती है । अतः पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है- **परितः आवृणोति आच्छादयति यत् तत् पर्यावरणम्** अर्थात् जीवों को चारों ओर से घेरने वाला आवरण ही पर्यावरण है । इस प्रकार पर्यावरण का तात्पर्य हमारे चारों ओर के उस आवरण एवं परिवेश से है जिससे हम घिरे रहते हैं और जो प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष रूप से हमें प्रभावित करता है । पर्यावरण को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है- प्राकृतिक पर्यावरण तथा सांस्कृतिक पर्यावरण । प्राकृतिक पर्यावरण से तात्पर्य उस पर्यावरण से है जो पूर्णतः प्रकृति प्रदत्त है जैसे वायु, जल, भूमि, वन एवं वन्य सम्पदा, पशु-पक्षी, मानव आदि। सांस्कृतिक पर्यावरण के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियाँ तथा सांस्कृतिक प्रतिमान जैसे- धर्म, कर्म, परम्पराएँ आदि सभी सम्मिलित हैं । इसी आधार पर पर्यावरण संरक्षण को भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- प्राकृतिक पर्यावरण संरक्षण तथा सांस्कृतिक पर्यावरण संरक्षण ।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में मंगलाचरण के रूप में शिव की जल-अग्नि-यजमान-सूर्य-चन्द्र-आकाश-पृथिवी-वायुस्वरूप जिन आठ मूर्तियों से सभी के कल्याण हेतु प्रार्थना की गई है, वे वस्तुतः पर्यावरण के ही मूलभूत अङ्ग हैं –

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम् ।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ।।[4]

शिव का अर्थ ही है- कल्याण और शुद्ध पर्यावरण में ही सभी का कल्याण सम्भव है ।

पर्यावरण-संरक्षण में ऋषि-मुनियों और उनके आश्रमों का विशेष महत्त्व रहा है । अभिज्ञानशाकुन्तलम् में मालिनी नदी के तट पर कण्वाश्रम की स्थिति कही गयी है । राजा दुष्यन्त भी पवित्र आश्रम के दर्शन से स्वयं को पवित्र मानता है – **पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे** ।[5] तपोवन में रहने वालों को कष्ट

न पहुँचाने के विचार से दुष्यन्त आश्रम से कुछ दूरी पर ही रथ रोक लेता है[6] तथा आभूषण और धनुष उतार कर विनीत वेष से आश्रम में प्रवेश करता है ।[7] इसी प्रकार हेमकूट पर्वत[8] पर मारीच ऋषि का आश्रम कहा गया है, जिन्होंने पति-परित्यक्ता शकुन्तला को आश्रय प्रदान किया ।[9]

यज्ञ-यागादि क्रियाओं की भी पर्यावरण-संरक्षण में विशिष्ट भूमिका है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने भी पर्यावरण संतुलन हेतु यज्ञ करने का उपदेश दिया है- **यज्ञाद्भवति पर्जन्यो...।।**[10] शकुन्तला की विदाई के अवसर पर ऋषि काश्यप शकुन्तला को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं- आहुति दिये गये द्रव्यों से सुगन्धित, पाप को नष्ट करती हुई यज्ञीय अग्नियाँ तुमको पवित्र करें –

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः
समिद्धन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः ।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धै-
र्वैतानास्त्वां बह्नयः पावयन्तु ।।[11]

दुष्यन्त के राजभवन में भी यज्ञशाला का उल्लेख है जिसे झाड़ू आदि लगाकर साफ-सुथरा रखा जाता था । प्रतिहारी कहती है – **एष अभिनवसंमार्जनसश्रीकः संनिहितहोमधेनुरग्निशरणालिन्दः ।**

मालिनी नदी[12], शचीतीर्थ[13] आदि प्राकृतिक जलस्रोतों से भिन्न नहर, जलाशय आदि कृत्रिम जलस्रोतों की भी व्यवस्था थी । वायु से चञ्चल नहर के जलों से वृक्षों की जड़ों के धुलने का वर्णन है- **कुल्याम्भोभिः पवनचपलैः शाखिनो धौतमूला-------।**[14] शकुन्तला की विदाई के अवसर पर शाङ्र्गरव महर्षि कण्व से कहता है- **'हे भगवन्, जल दिखाई देने तक प्रिय व्यक्ति अनुसरण किया जाना चाहिये, ऐसा सुना जाता है। तो यह जलाशय का तट है ।'**[15] नदी, जलाशयादि के जलकणों को वहन करती हुई शीतल वायु निरन्तर आलिङ्गन के योग्य थी- **----------अविरलमालिङ्गितुं पवनः** । इस प्रकार यज्ञ के औषधीय धूम तथा नदी, जलाशय आदि के कारण वायु शुद्ध और शीतल रहती थी तथा शुद्ध वातावरण का निर्माण होता था । निःसन्देह, शुद्ध वातावरण में मन में शुभसंकल्प आते हैं और मनुष्य शुभ कर्मों में प्रवृत्त होता है ।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में पशु-पक्षी-संरक्षण को भी महाकवि ने अत्यन्त रमणीय रूप में दर्शाया है । आश्रम-सीमा में प्रवेश कर राजा दुष्यन्त ने ज्यों ही शरसन्धान कर मृग को मारना चाहा तभी वैखानस कह उठा- **राजन् ! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः** ।[16] राजा भी मुनि से निर्दिष्ट हो अपना बाण वापस ले लेता है।[17] कण्वाश्रम में प्रवेश करने से पूर्व दुष्यन्त अपने अश्वों के विषय में भी विचार करना नहीं भूलता । वह सूत को अश्वों को स्नान कराने का आदेश देता है- **यावदाश्रमवासिनः प्रत्यवेक्ष्याहमुपावर्ते तावदार्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वाजिनः**[18] और तपस्वीजनों के शाप के भय से[19] मृगया न करने का निर्णय लेता है ।[20] विदाई के अवसर पर शकुन्तला पर्णकुटी के आस-पास विचरण करने वाली गर्भिणी मृगी की भावी सन्तति-सम्बन्धी समाचार हेतु भी अपनी जिज्ञासा अभिव्यक्त करती हुई पिता काश्यप से कहती है- **तात, एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदानघप्रसवा भवति तदा मह्यं कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जयिष्यथ।** शकुन्तला के द्वारा श्यामाक नामक धान्यविशेष की मुट्ठी परिमित ग्रासों से पालन किया गया कृतकपुत्र मृगविशेष उसके वस्त्र खींचकर मार्ग अवरुद्ध करता हुआ अपने प्रेम को प्रकट करता है।[21] सिंहशावक के दाँत गिनने का प्रयास करते हुए सर्वदमन को रोकती हुई एक तपस्विनी कहती है- हे धृष्ट, क्यों हमारी सन्तान से अभिन्न प्राणियों को पीड़ित कर रहा है – **अविनीत, किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि ।**[22]

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में विभिन्न स्थानों पर इङ्गुदी[23], केसर[24], आम्र[25], सप्तपर्ण[26], वेंत[27], बरगद[28] आदि वृक्ष-वनस्पतियों, लताओं[29] आदि से सम्बन्धित सन्दर्भ प्राप्त होते हैं । कण्वाश्रम के उपवन में तपस्विकन्यायें अपनी-अपनी शक्ति के अनुरूप सींचने के घड़ों से छोटे पौधों को पानी देने का कार्य करती थी - **एतास्तपस्विकन्यकाः स्वप्रमाणानुरूपैः सेचनघटैबलिपादपेभ्यः पयो दातुमित-----।**[30] छोटे वृक्षों के चारों ओर आलवाल बनाकर उनमें सिंचाई की उचित व्यवस्था की गई थी – **------आलवाल पूरणे नियुक्ता।**[31] वन-वृक्षों के प्रति शकुन्तला का सहोदर भाई के समान प्रेम[32] किसके मन को मोहित नहीं कर देता। चतुर्थ अङ्क में शकुन्तला की विदाई के अवसर पर ऋषि काश्यप आश्रम के वृक्षों से भी शकुन्तला को पति- गृह जाने की अनुमति देने के लिए कहते हैं-

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।[33]

शकुन्तला के कामजनित ताप की शान्ति के लिए अनसूया और प्रियंवदा खस का लेप तथा कमलनाल के पत्तों का प्रयोग करती है- **स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलितमृणालैकवलयं प्रियायाः साबाधं किमपि कमनीयं वपुरिदम् ।**[34] लू लग जाने पर भी इनका प्रयोग किया जाता था ।[35] इसी प्रकार इङ्गुदी के तेल को घाव भरने की औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता था । शकुन्तला कुशा के अग्रभाग से क्षत मुख वाले मृग के मुख में इङ्गुदी का तेल लगाकर उपचार करती है- **------ व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे** ।[36] अपराजिता नामक औषधि का भी वर्णन प्राप्त होता है जिसे सर्वदमन के जातकर्म संस्कार के समय भगवान् मारीच ने रक्षासूत्र के रूप में दिया था- **एषाऽपराजिता नामौषधिरस्य जातकर्म समये भगवता मारीचेन दत्ता ।**[37]

निःसन्देह, वन-वनस्पतियाँ भूमि पर जीव के लिए प्रकृति का अमूल्य उपहार है। ये पशु-पक्षियों को आश्रय प्रदान करते हैं । इनसे शुद्ध और स्वास्थ्यवर्धक वायु प्राप्त होती है । वर्षा होने तथा भूमि के कटाव को रोकने में भी ये सहायक हैं । अतः वन-वनस्पति-संरक्षण पर पशु-

पक्षी-संरक्षण, वायु-संरक्षण, जल-संरक्षण तथा भूमि-संरक्षण आदि सभी निर्भर हैं।

प्राकृतिक पर्यावरण-संरक्षण के समान ही अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सांस्कृतिक पर्यावरण-संरक्षण-सम्बन्धी सन्दर्भ भी प्राप्त होते हैं। कौशिक-परित्यक्ता शकुन्तला का पालन-पोषणादि महर्षि कण्व द्वारा किया गया तथा दुर्वासा शाप के कारण मतिभ्रम हो जाने पर दुष्यन्त द्वारा पहिचान न किये जाने पर महर्षि मारीच ने गर्भवती शकुन्तला को न केवल अपने आश्रम में आश्रय प्रदान किया अपितु दुष्यन्त और शकुन्तला के पुत्र सर्वदमन का जातकर्म संस्कार भी सम्पन्न किया। पुनर्मिलन के अवसर पर दुष्यन्त भगवान् मारीच से कहता है कि आपके द्वारा संस्कार किए गये अपने पुत्र में हम सब प्रकार की आशा करते हैं- **भगवता कृतसंस्कारे सर्वमस्मिन्वयमाशास्महे**।[38]

भारतीय संस्कृति में देवयज्ञ (यज्ञ-हवनादि करना), भूतयज्ञ (प्राणियों के लिए बलि प्रदान करना), पितृयज्ञ (बड़ों की सेवा, पितरों के लिए श्राद्ध-तर्पणादि करना), ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय करना), नृयज्ञ(अतिथि-सेवा एवं मानव-कल्याण)- इन पञ्चमहायज्ञों का विशेष महत्त्व है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में कण्वाश्रम तथा दुष्यन्त के भवन में यज्ञशाला[39] आदि का प्रसंग देवयज्ञ, शकुन्तला के द्वारा पक्षियों के लिए नीवार की पूजा-बलि का डालना[40] भूतयज्ञ तथा पश्चात्ताप करते हुए दुष्यन्त की अपने बाद अपने पितरों के पिण्ड-श्राद्ध-तर्पणादि के विषय में चिन्ता करना[41] आदि पितृयज्ञ को सूचित करते हैं। कण्वाश्रम तथा मारीच-आश्रम में गुरु-शिष्य-सम्बन्ध[42] ब्रह्मयज्ञ का प्रमाण है। नृयज्ञ को तो महाकवि ने विशेष महत्त्व दिया है। महर्षि कण्व अपनी अनुपस्थिति में शकुन्तला को अतिथि-सत्कार में नियुक्त करते हैं- **दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः**।[43] दुर्वासा के प्रति शून्यहृदया शकुन्तला के द्वारा अपराध हेतु उसे कठोर दण्ड भोगना पड़ता है।[44] तपस्विजनों के आगमन का समाचार प्राप्त कर दुष्यन्त उनके वेदप्रतिपाद्य विधि से उचित सत्कार हेतु उपाध्याय सोमरात को नियुक्त कर अपने आप प्रवेश कराने का आदेश देता है- **तेन हि मद्वचनाद्विज्ञाप्यतामुपाध्यायः सोमरातः। अमुनाश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हतीति**।[45]

इसके अतिरिक्त किसी भी समाज, राज्य अथवा राष्ट्र की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर रूप ललित कलाओं (वास्तुकला, चित्रकला ,संगीतकला तथा मूर्तिकला) का भी वर्णन है। राजा दुष्यन्त अपने नाम से चिह्नित अँगूठी शकुन्तला को पहनाता है- **स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं पिनद्धम्** ।[46] पश्चात्ताप की अग्नि से संतप्त दुष्यन्त शकुन्तला का चित्र बनाकर अपने संताप को कम करने का प्रयास करता है- **स्विनाङ्गुलिविनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः । अश्रु च कपोलपतितं दृश्यमिदं वर्तिकोच्छ्वासात्**।[47] संगीतशाला में मधुर और श्रुतिसुखद विशुद्धा नाम के गाने का अभ्यास करने वाली हंसपदिका का वर्णन है, विदूषक दुष्यन्त से कहता है- **भो वयस्य, संगीतशालान्तरेऽवधानं देहि। कलविशुद्धाया गीतेः स्वरसंयोगः श्रूयते । जाने तत्रभवती हंसपदिका वर्णपरिचयं करीतीति**।[48] सप्तम अङ्क में तपस्विनी रंगो से रंगे हुए मिट्टी का मोर देकर सिंहशावक को सर्वदमन से छुड़ाना चाहती है- **मदीये उटजे मार्कण्डेयस्यर्षिकुमारस्य वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूर-स्तिष्ठति। तमस्योपहर**।[49]

लोक की रक्षा करना एक राजा का विश्राम रहित अधिकार है- **अविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः**।[50] अभिज्ञानशाकुन्तलम् में राजा दुष्यन्त के रूप में एक उत्तम शासक के आदर्श को प्रस्तुत किया गया है। राजा के कण्वाश्रम में प्रवेश के साथ ही कार्य उपद्रव रहित होने प्रारम्भ हो जाते हैं। शिष्य कहता है- **अहो महानुभावः पार्थिवो दुष्यन्तः । प्रविष्टमात्र एवाश्रमं तत्रभवति राजनि निरुपद्रवाणि नः कर्माणि प्रवृत्तानि भवन्ति**।[51] पञ्चम अङ्क मे तपस्विजनों के आगमन पर जब राजा दुष्यन्त उनसे मुनिजन के विघ्नरहित तपस्या के विषय में पूछता है तो ऋषिगण कहते हैं- सत्पुरुषों की रक्षा करने वाले तुम्हारे होने पर धार्मिक यज्ञादि क्रियाओं में विघ्न कहाँ से ? सूर्य के तपते हुये होने पर अन्धकार कैसे प्रकट होगा ? अर्थात् कैसे भी प्रकट नहीं हो सकता -

कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि।
तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ।।[52]

इन्द्र भी दुष्यन्त का मित्र है और अपने शत्रु, दुर्जय नामक राक्षस पर विजय प्राप्ति हेतु दुष्यन्त की सहायता की अपेक्षा रखता है[53], जिसे दुष्यन्त अपने पराक्रम से सन्तुष्ट करता है और इन्द्र द्वारा विशिष्ट सत्कार को प्राप्त करता है।[54] इन्द्र की कार्यसिद्धि हेतु गमन से पूर्व राजा दुष्यन्त अपनी अनुपस्थिति में अमात्य पिशुन पर प्रजा की रक्षा का दायित्व सौंपता है।[55] वस्तुतः प्रजाहित में संलग्न रहना एक राजा का सर्वोपरि कर्त्तव्य है।

महर्षि दुर्वासा के शाप के प्रभाव से शकुन्तला सम्बन्धी वृत्तान्त के सम्बन्ध में विस्मृत मति वाला राजा दुष्यन्त शकुन्तला को दूसरे की स्त्री मानता हुआ ध्यान से देखने योग्य नहीं समझता- **अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्**।[56] यह राजा की चारित्रिक विशेषता का प्रमाण है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में महाकवि ने कठोर दण्डव्यवस्था एवम् उत्कृष्ट न्यायव्यवस्था को भी विशेष स्थान दिया है। मछुआरे के पास राजा की अगूँठी मिलने पर नगररक्षाधिकारी उसे तुरन्त पकड़कर राजा को सूचित करते हैं और अगूँठी की पहिचान हो जाने पर राजा उसे प्रसन्नतापूर्वक अगूँठी के मूल्य के बराबर पुरस्कार देने का आदेश देता है।[57] सभी को अपने कार्य का सम्मान करना चाहिये। वंशपरम्परागत कार्य को अपरिहार्य बतलाया गया है –

सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः ।।[58]

(वंशपरम्परागत जो काम निश्चित रूप से निन्दित है, उस को निश्चित रूप से नहीं छोड़ना चाहिये। क्योंकि यज्ञीय पशुओं को

मारने के कार्य के कारण क्रूर (भी) वेदविद् ब्राह्मण दया के कारण कोमल स्वभाव वाला ही होता है ।)

धर्मपूर्वक शासन-व्यवस्था से सम्बन्धित एक प्रशंसनीय प्रसंग प्राप्त होता है । धनमित्र नामक व्यापारी के समुद्र में डूबकर मृत्यु के प्राप्त हो जाने पर उसकी सम्पूर्ण धन-सम्पत्ति राजकोष में जाने वाली थी किन्तु राजा उसकी पत्नियों में से किसी के गर्भवती होने का पता लगवाने का आदेश देता है । प्रतिहारी राजा को सूचित करती है कि अयोध्यावासी सेठ की पुत्री, जिसका सम्प्रति ही पुंसवन नामक संस्कार सम्पन्न हुआ है वह इसकी पत्नी सुनी जाती है ।इस पर राजा आदेश देता है- **निश्चित रूप से गर्भस्थ शिशु पितृसम्बन्धी धन को प्राप्त करने के योग्य होता । जाओ । इस प्रकार मन्त्री को कह दो ।**[59] साथ ही यह घोषणा करवाता है –

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना ।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम् ।।[60]

(जिस जिस प्रिय बन्धु से प्रजायें वियुक्त होती हैं, पाप वाले सम्बन्ध के बिना दुष्यन्त उन प्रजाओं का वह वह है, ऐसी घोषणा करवा दो ।) उपर्युक्त प्रसंग राज्य और प्रजा दोनों की आर्थिक समृद्धि का भी प्रतीक है । समुद्रमार्ग से विदेशों से व्यापार किया जाता था तथा व्यापारी आर्थिक रूप से अत्यन्त समृद्ध थे । प्रथम अङ्क में भी चीन देश में उत्पन्न वस्त्र का ध्वजा के रूप में प्रयोग किए जाने का संकेत प्राप्त होता है- **चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ।।**[61]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् में महाकवि कालिदास ने प्राकृतिक पर्यावरण के साथ ही सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पर्यावरण का भी विशुद्ध चिन्तन किया है । शिव का शिवमय स्वरूप, पर्यावरण-संरक्षण में ऋषि-आश्रमों की भूमिका, शकुन्तला का प्रकृति-प्रेम, ऋषि काश्यप का विदाई-काल के समय शकुन्तला को दिया गया उपदेश, दुष्यन्त का निरन्तर लोक-हित में संलग्न रहना आदि अनेकानेक सन्दर्भ न केवल पर्यावरण और पर्यावरण-संरक्षण के प्रति महाकवि की अलौकिक चेतना का दिग्दर्शन कराते हैं अपितु मानव को सर्वाङ्गसुन्दर पर्यावरण के निर्माण एवं संरक्षण के पथ पर भी प्रशस्त करते हैं। इस प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तलम् के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् में पर्यावरण एवं पर्यावरण-संरक्षण से सम्बन्धित सन्दर्भ यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं जो वर्तमान समय में भी प्रासंगिक हैं ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

१. शास्त्री, डॉ. कपिलदेव (समीक्षक); शास्त्री, रतिराम (प्रकाशक), १९८५–८६, निरुक्त (यास्काचार्य विरचित), साहित्य भण्डार, मेरठ ।

२. कृष्णकृपाश्रीमूर्ति (अनुवादक), १९९०, श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट मुंबई ।

३. विद्यालङ्कार, डॉ. निरूपण (सम्पादक) २००४, अभिज्ञानशाकुन्तलम् (महाकविकालिदासविरचित), साहित्य भण्डार सुभाष नगर, मेरठ-२ ।

४. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिन्दी-शब्दकोश, २०१०, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।

सन्दर्भ

1 'परि' इति सर्वतोभावम्, निरुक्त, 1.1, पृ.-32

2 संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ.-561

3 वृणोति-संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ.-927

4 अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1.1, पृ.सं. 7

5 अभि.शा., प्रथम अङ्क, पृ.सं. 41

6 तपोवननिवासिनामुपरोधो माभूत्। एतावत्येव रथं स्थापय यावदवतरामि। - अभि.शा., प्रथम अङ्क, पृ.सं. 45

7 राजा- सूत, विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम । इदं तावद् गृह्यताम् । - अभि.शा., प्रथम अङ्क, पृ.सं. 46

8 एष खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषपर्वतस्तपः- संसिद्धिक्षेत्रम् ।- अभि.शा., सप्तम अङ्क, पृ.सं. 463

9 स्वायंभुवान्मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः ।
सुरासुरगुरुः सोऽत्र सपत्नीकस्तपस्यति ।। - अभि.शा., 7.9, पृ.सं. 463

10 श्रीमद्भगवद्गीता- 3.14

11 अभि.शा., 4.8

12 मालिनी तीरेषु-------।- अभि.शा., तृतीय अङ्क, पृ.सं. 164

13 शचीतीर्थसलिलं वन्दमानायाः-------। अभि.शा., पञ्चम अङ्क, पृ.सं. 326

14 अभि.शा., 1.15, पृ.सं. 44

15 भगवन्, उदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते । तदिदं सरस्तीरम् । - अभि.शा., चतुर्थ अङ्क, पृ.सं. 261

16 अभिज्ञानशाकुन्तलम्- प्रथम अङ्क, पृ.सं. 34

17 एष प्रतिसंहृतः । - अभि.शा., प्रथम अङ्क, पृ.सं. 37

18 अभि.शा., प्रथम अङ्क, पृ.सं. 46

19 शमप्रधानेषु तपोवनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ।- अभि.शा.,2.7, पृ.सं. 126

20 गाहन्तां महिषा निपानसलिलं-----शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः।।अभि.शा.2.6

21 श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते।।- अभि.शा., 4.14, पृ.सं. 258

22 अभि.शा., सप्तम अङ्क, पृ.सं. 475

23 क्वचिदिङ्गुदीफलमिदः सूच्यन्त एवोपलाः ।- अभि.शा.,1.14, पृ.सं. 42

24 एष वातेरितपल्लवाङ्गुलीभिस्त्वरयतीव मां केसरवृक्षकः ।
- अभि.शा., पृ.सं. 59

25 इयं स्वयंवरवधूः सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योत्स्नेति नवमालिका। - अभि.शा.,प्रथम अङ्क, पृ.सं. 60

26 प्रच्छायशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायां मुहूर्तमुपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः ।- अभि.शा.,प्रथम अङ्क, पृ.सं. 75

27 यद्वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति----------।- अभि.शा., द्वितीय अङ्क, पृ.सं. 114

28 तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः ।- अभि.शा., चतुर्थ अङ्क, पृ.सं. 261

29 अस्मिन्वेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपे----------।- अभि.शा., तृतीय अङ्क, पृ.सं. 166;
लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये ।- अभि.शा., चतुर्थ अङ्क, पृ.सं. 255;
एष मणिशिलापट्टकसनाथो माधवीमण्डप ---------- । अभि.शा., षष्ठ अङ्क, पृ.सं. 382

30 अभि.शा., प्रथम अङ्क, पृ.सं. 48

31 अभि.शा., प्रथम अङ्क, पृ.सं. 51

32 अस्ति मे सोदरस्नेह एतेषु । - अभि.शा., प्रथम अङ्क, पृ.सं. 51

33 अभि.शा., 4.9

[34] अभि.शा., 3.6, पृ.सं. 168

[35] शिष्यः- प्रियंवदे, कस्येदमुशीरानुलेपनं मृणालवन्ति च नलिनीपत्राणि----------आतपलङ्घनाद्बलवदस्वस्था शकुन्तला । तस्याः शरीरनिर्वापणायेति । तर्हि त्वरितं गम्यताम् ।- अभि.शा., चतुर्थ अङ्क, पृ.सं. 158

[36] अभि.शा., 4.14, पृ.सं. 258

[37] अभि.शा., सप्तम अङ्क, पृ.सं. 489

[38] अभि.शा., सप्तम अङ्क, पृ.सं. 519

[39] अग्निशरणं प्रविष्टस्य.....।- अभि.शा., चतुर्थ अङ्क, पृ.सं. 235;
वेत्रवति, अग्निशरणमार्गमादेशय ।- अभि.शा., पञ्चम अङ्क, पृ.सं. 293

[40] अभि.शा., 4.21, पृ.सं. 274

[41] अस्मात्परं बत यथाश्रुति संभृतानि
को नः कुले निवपनानि नियच्छतीति ।
नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं
धौतश्रुशेषमुदकं पितरः पिबन्ति ।।- अभि.शा., 6.25 पृ.सं. 425

[42] शिष्यः- अहो ---------दर्भानृत्विग्भ्य उपनयामि ।- अभि.शा., तृतीय अङ्क, पृ.सं. 158;
मारीचः – कः कोऽत्रः भोः ।
शिष्यः – भगवन्, अयमस्मि ।
मारीचः – गालव, इदानोमेव---------प्रतिगृहीतेति ।
शिष्यः – यदाज्ञापयति भगवान् ।- अभि.शा., सप्तम अङ्क, पृ.सं. 520

[43] अभि.शा., प्रथम अङ्क, पृ.सं. 40

[44] आः अतिथिपरिभाविनी,
विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम् ।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि स-
न्कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ।। - अभि.शा., 4.1, पृ.सं. 221

[45] अभि.शा., पञ्चम अङ्क, पृ.सं.296

[46] अभि.शा., चतुर्थ अङ्क, पृ.सं. 225

[47] अभि.शा., 5.15, पृ.सं. 401

[48] अभि.शा., पञ्चम अङ्क, पृ.सं. 285

[49] अभि.शा., सप्तम अङ्क, पृ.सं 480

[50] अभि.शा., पञ्चम अङ्क, पृ. 291

[51] अभि.शा., तृतीय अङ्क, पृ. 158

[52] अभि.शा., 5.14, पृ. 311

[53] सख्युस्ते स किल शतक्रतोरजय्यस्तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता । - अभि.शा., 6.30, पृ.सं. 436

[54] गणयत्यवदानविस्मितो भवतः सोऽपि न सत्क्रियागुणान् ।। - अभि.शा., 7.1, पृ.सं. 450

[55] त्वन्मतिः केवला तावत्परिपालयतु प्रजाः ।
अधिज्यमिदमन्यस्मिन्कर्मणि व्यापृतं धनुः ।। - अभि.शा., 6.32

[56] अभि.शा., पञ्चम अङ्क, पृ. 310

[57] रक्षिणौ- अरे कुम्भीरक----------एष भर्त्राङ्गुलीयकमूल्यसंमितः प्रसादोऽपि दापितः ।- अभि.शा., षष्ठ अङ्क, पृ.सं. 355-360

[58] अभि.शा., 6.1, पृ. स. 355

[59] राजा- समुद्रव्यवहारी सार्थवाहो धनमित्रो ----------विचार्यतां यदि काचिदापन्नसत्त्वा तस्य भार्यासु स्यात् ।
प्रतिहारी – देव, इदानीमेव साकेतस्य श्रेष्ठिनो दुहिता निर्वृत्तपुंसवना जायाऽस्य श्रूयते ।
राजा- ननु गर्भः पित्र्यं रिक्थमर्हति । गच्छ । एवममात्यं ब्रूहि ।- अभि.शा., षष्ठ अङ्क, पृ.सं. 419

[60] अभि.शा., 6.23, पृ.सं. 422

[61] अभि.शा., 1.34, पृ. सं. 100